Volume-3, No. II, Aug-2016, pp. 85-86

आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था के संदर्भ में प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था की उपयोगिता

डॉ0 आतिफ हुसैन रिजवी,
अंशकालीन प्रवक्ता राजनीतिक शास्त्र,
पी0सी0 बागला महाविद्यालय, हाथरस उ. प्र. भारत।

सार

समाज का अस्तित्व सुचारू रखने के लिए समाज में व्यवस्था होना अति आवश्यक है। यदि हमारे जीवन में सुव्यवस्था न हो तो हमारा सामाजिक जीवन नष्ट हो जाएगा एवं समाज में अव्यवस्था फैल जाएगी एवं लोगों का जीवन व्यतीत करना मुश्किल हो जाएगा। इस अव्यवस्था भरे जीवन में लोग अपने को असुरक्षित अनुभव करेंगे। समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए समाज में व्यवस्था आवश्यक है। अतः समाज को व्यवस्थित रखने के लिए अपराधियों में दण्ड का भय आवश्यक है। यदि अपराधियों में दण्ड का भय न हो तो जिस प्रकार एक तालाब में एक बड़ी मछली छोटी मछलियों का भक्षण करती है उसी प्रकार समाज में बलवान व्यक्ति कमजोर व्यक्तियों को सताने लगेंगे।

मुख्य शब्दः न्याय व्यवस्था, ग्राम न्यायालय, पुर न्यायालय, कुल न्यायालय, सभा न्यायालय, श्रेणी न्यायालय

समाज में सभी मनुष्य समान नहीं होते हैं। कुछ स्वभाव में सरल एवं सीधे एवं कुछ व्यक्ति झगड़ालू प्रकृति के होते हैं। इसलिए उनमें संघर्ष होता रहता है। इस संघर्षमय जीवन का मूल कारण खोजकर दोषी व्यक्ति को उसके दोष के आधार पर दण्ड देना, कानून व्यवस्था बनाए रखना आदि के कार्यों के लिए न्याय व्यवस्था की आवश्यकता प्रतीत होती है।

आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था के संदर्भ में प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था की उपयोगिता हमारे देश की न्याय व्यवस्था पर विचार करना आवश्यक है। न्यायपालिका लोकतांत्रिक व्यवस्था का स्तम्भ हैं। हमारे देश में न्याय विशेषकर उन निर्धन एवं कमजोर लोगों के लिए जिनके पास धन की कमी है, उन्हें प्राप्त करना एक बड़ी चुनौती है। उन्हें सस्ता न्याय प्रदान करने की समस्या लगातार गम्भीर होती जा रही है। समाज में ऐसे भी लोग हैं जो कि निर्धन एवं अशिक्षित हैं जो कि न्यायालयों तक पहुँचने में समर्थ नहीं हैं और यदि किसी भी तरह पहुँच भी जाए तो भी न्यायालयों के निर्णय में इतना अधिक समय लग जाता है। इस अधिक समय में दिए गए निर्णय से व्यथित होकर पक्षकार अपील अथवा रिवीजन आदि उच्च न्यायालय से लेकर उच्चतम न्यायालय तक करते रहते हैं एवं पक्षकारों द्वारा समय एवं धन अपव्यय करना पड़ता है। इसका मुख्य कारण न्यायालयों में लम्बित वादों का बढ़ना है। न्यायालयों में लम्बित मामलों का यह बोझ कम होने के स्थान पर बढ़ता ही जा रहा है। हमारे देश की न्याय व्यवस्था पर एक नजर करें तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारे देश की न्याय प्रणाली अत्याधिक लम्बी एवं खर्चीली हो गई है। एक ओर ऐसा व्यक्ति जो कि साधन सम्पन्न है जिसके पास धन है, जो कि अपने अधिकार प्राप्त रखने की क्षमता रखता है एवं जिसने गम्भीर अपराध किया हो और जिनके पास धनबल है, वह न्यायालयों से दोषमुक्त हो जाता है। दूसरी ओर ऐसा व्यक्ति जो कि निर्धन एवं कमजोर है वह न्यायालय में वर्षों चलने वाली सुनवाई के दौरान दण्ड भोगता है।

हमारे देश की न्याय व्यवस्था में दो प्रकार के न्यायालय प्रचलित हैं– दीवानी एवं फौजदारी। यहॉ तक दीवानी मामलों की बात की जाए तो इन मामलों में सम्पत्ति सम्बन्धी वाद आते हैं इन वादों में इतना अधिक समय लग जाता है। यदि प्रथम न्यायालय में न वादों का निर्णय भी हो जाता है तो द्वितीय न्यायालय में इन निर्णयों की अपील कर दी जाती है। वहां पर निर्णय हो जाने पर उच्च न्यायालय एवं वहां पर निर्णय हो जाने पर उच्चतम न्यायालय में अपील प्रस्तुत कर दी जाती है। अर्थात सुनवाई होने एवं अन्तिम निर्णय होने पर मनुष्य के जीवन का आधा समय लग जाता है। आपराधिक वाद हो अथवा दीवानी गवाहों का क्रय एवं विक्रय होना आम बात है। न्यायालय में पक्षकारों के पहुँचते ही अधिवक्ताओं की मनमानी फीस पक्षकारों का मानसिक शोषण करती है। इसके अतिरिक्त न्यायाधीशों में भ्रष्टाचार अक्षमता एवं अनैतिक आचरण एवं नशाखोरी के मामले भी देखने को मिलते हैं। इस प्रकार यह कहना गलत नहीं होगा कि हमारे देश में वर्तमान न्याय व्यवस्था दोषयुक्त है। एक बार न्यायालय में व्यक्ति के पहुँचने पर उसका आधा जीवन न्यायालय में चक्कर

काटते–काटते बीत जाता है। इसके साथ ही वर्तमान न्याय व्यवस्था में न्याय एक निर्धन व्यक्ति की पहुँच से दूर है। इस प्रकार हमारे देश की आधुनिक न्याय व्यवस्था में एक लचर व्यवस्था देखने को मिलती है। इसके साथ ही आधुनिक भारतीय न्याय एवं व्यवस्था के संदर्भ में प्राचीन भारत का न्याय एवं दण्ड व्यवस्था प्रकाश डालना आवश्यक है।

प्राचीन काल में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायालयों की आवश्यकता पर बल दिया गया है। जिस प्रकार वर्तमान काल में उच्चतम न्यायालयों को सर्वोच्च न्यायालय कहा गया है, जिसके ऊपर किसी प्रकार की अपील नहीं हो सकती है उसी प्रकार राजा के न्यायालय को सर्वोच्च न्यायालय की दृष्टि से देखा जाता था एवं राजा के न्यायालय से ऊपर किसी भी प्रकार की अपील नहीं हो सकती है।[1] इससे संकेत मिलता है कि इस काल में प्रजा को अतिशीघ्र न्याय प्राप्त हो जाता था। प्राचीन काल में न्याय की अवधारणा पर बल दिया गया है। न्याय व्यवस्था के बिना मानव जीवन की कल्पना करना असम्भव है। भारत में प्राचीन काल से ही न्याय की अत्याधिक महत्ता रही थी। भारतीय धर्मशास्त्रों में भी न्याय करना राजा के मुख्य कर्तव्यों में गिना जाता था। इस काल में भी न्याय की आवश्यकता एवं उसके महत्व पर अधिक बल दिया गया है। इस काल में न्यायाधीश के पद पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त नहीं करना चाहिए जो लालची, पक्षपाती तथा न्याय क्षेत्र में अनुभवहीन हो।[2] इससे यह संकेत मिलता है कि प्राचीन काल में निष्पक्ष न्याय पर बल दिया है। रामायण में भी पक्षपातपूर्ण न्याय को बहुत बड़ा पाप घोषित किया गया है।[3]

प्राचीन काल में निम्न प्रकार की न्यायालयों का उल्लेख प्राप्त होता है–

न्याय सभा– विवाद की स्थिति उत्पन्न होने पर विवादों का निपटारा सभ्य न्यायालयों द्वारा ही किया जाता था।[4]

ग्राम न्यायालय– ग्रामवासियों के विवाद के निपटारे हेतु न्यायालय[5]

पुर न्यायालय– पुर वासियों के लिए पुर न्यायालय[6]

कुल न्यायालय– ऐसा न्यायालय जिसका कार्य निकट या दूर के सम्बन्धियों में समझौता कराना।[7]

श्रेणी न्यायालय– वर्तमान समय की पंचायत।[8]

सभा न्यायालय– राजा के न्यायालय को सभा के नाम से सम्बोधित किया गया है।[9]

इससे संकेत मिलता है कि इस काल में ग्राम एवं शहर के लिए प्रथक–प्रथक न्यायालय प्रचलित थे। इस प्रकार इस काल की न्याय व्यवस्था में जनता के हितों का ध्यान रखा जाता था।

प्राचीन काल में भी विवाद पर निर्णय देने से पूर्व न्यायाधीश द्वारा साधारण प्रक्रिया अपनाई जाती थी। इस प्रक्रिया में विवादों का निर्णय देने से पूर्व विभिन्न प्रकार के प्रमाण प्रयोग में लाए जाते थे। असत्य साक्ष्य देने वाले को दण्डित किया जाता था एवं लिखित प्रमाण को विशेष महत्व दिया जाता था एवं न्यायिक प्रक्रिया में साक्षियों के लिए विभिन्न प्रकार की शपथों का उल्लेख प्राप्त होता है।

इससे संकेत मिलता है कि इस काल में निष्पक्ष न्याय के सिद्धान्त पर बल दिया जाता था।

इस प्रकार आधुनिक न्याय व्यवस्था की प्राचीन न्याय व्यवस्था से तुलना करने पर यह पता चलता है कि दोनों ही कालों में न्याय की महत्ता को स्वीकार किया जाता है। प्राचीन काल में पीड़ित व्यक्ति को त्वरित न्याय प्राप्त हो जाता था। परन्तु आधुनिक काल में न्याय प्राप्त करने में अत्यधिक समय व्यतीत होता है। प्राचीन काल में ग्राम एवं पुरवासियों की सुविधा हेतु प्रथक–प्रथक न्यायालय विद्यमान थे। राजा के न्यायालय के ऊपर किसी प्रकार की अपील नहीं हो सकती थी। परन्तु वर्तमान काल में शहर एवं ग्रामवासियों के लिए एक ही न्यायालय प्रचलित हैं तथा सर्वोच्च न्यायालय को प्राचीन काल के राजा के न्यायालय के समकक्ष देखा जाता है। दोनों ही कालों की न्याय व्यवस्था में निर्णय देने से पूर्व विभिन्न प्रकार की प्रक्रिया अपनाई जाती थी। प्राचीन काल में न्यायाधीश पद पर लालची, पक्षपाती एवं अनुभवहीन व्यक्ति को नियुक्त न करने को कहा है परन्तु वर्तमान काल में भ्रष्टाचार न्यायालय का प्रमुख दोष है। इस प्रकार दोनों काल की न्याय व्यवस्था की तुलना करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन काल की न्याय व्यवस्था वर्तमान काल की न्याय व्यवस्था से श्रेष्ठकर थी।

सन्दर्भ–

1. नीति वाक्यामृतम समुदेश 28 श्लोक 23 पृष्ठ 158
2. नीति वाक्यामृतम समुदेश 28 श्लोक 5 पृष्ठ 155
3. रामायण, अयोध्या काण्ड 75, 58
4. शुक्रनीति अध्याय 4 श्लोक 6 पृष्ठ 278
5. नीति वाक्यामृतम समुदेश 28 श्लोक 22 पृष्ठ 158
6. वही श्लोक 22
7. प्राचीन भारत में शासन पद्धतिः अल्टेकर पृष्ठ 189
8. शुक्रनीति अध्याय 4 श्लोक 29 पृष्ठ 272
9. नीति वाक्यामृतम समुदेश 28 पृष्ठ 155